

सर्व प्राप्तियों की अधिकारी मैं हूँ ही आत्मा

“मैं कौन हूँ” का सत्य समाधान न पाने के कारण ही आज सभी बेवैन हैं। स्वयं को न जानने के ही कारण, देह अभिमान की उलझनों के नित नये-रूपों से उलझते रहते हैं। क्या मैं डाक्टर-वकील, दर्जी, किसान कहलाने वाली षरीर हूँ ? षरीर मानते रहने से खेलने-खाने में ही बचपन चला गया। जवाबी उन्मादों से भरी रही। ढलती उमर के कारण षरीर गलने लगी तो चंचल इन्द्रियाँ षिथिल पड़ गयीं। सम्प्रदारों सन्तानों में बंट गयी तो उपेक्षित सा जीवन हो गया। बुढ़ापे में कमजोरी व आधियों-व्याधियों से बचना ही मुष्किल हो गया। तो मेरा बजूद, क्या इतना ही है ? आखिर कर्मइन्द्रियों रूपी कर्मचारियों से कर्म करने वाली, वह है कौन ?

षरीर से आत्मा के निकलते ही पत्नी, बेटे व बेटी जैसे निकट संबंधी भी दूर खड़े रहते हैं। खून-पसीने से कमाया हुआ सारा वैभव वा प्रतिशुठा क्षण मात्र में छिन जाता है। मेरे कहलाने वाले निकट हितैशी लोग ही लपेट-बाँधकर घर से बाहर निकाल देते हैं। जिनके लिये रातों-दिन एक कर रखा था आखिर उनसे मिला क्या ? जीवन भर सजने-सबरने वाली षरीर तो लकड़ियों के बीच दबाकर जलाई जा रही है। थोड़ा सा कष्ट होने पर कितना उपचार करते थे ? अब मित्र संबंधी ही जलाकर खाक में मिला रहे हैं। बचाने की बजाय गहरे पानी में डुबो रहे हैं या गहरे गड़ढे में डालकर ऊपर से पक्का ढक्कन लगा रहे हैं। अपनी कही जाने वाली जर-जोरु-जमीन एक भी साथ नहीं निभा रही है। श्रद्धा-तर्पण करके कुछ ही दिनों बाद नामों-निषान मिट गया। जीवन की सारी भाग दौड़ क्या त्यर्थ ही गयी ?

नहीं षरीर छोड़ने के बाद भी मैं आत्मा तो अभी भी हूँ । काया की माया मिट जाने पर भी मैं सूक्ष्म रूप से भ्रमण कर रहा हूँ। गलती बस ही मृत्यु तक मैं अपने को षरीर मानता रहा। यह झूठी मान्यता इतनी प्रगाढ़ हो गयी थी कि आत्मा और षरीर की भिन्नता दिल-दिमाग में उतरती ही नहीं थी। षारीरिक लगाव व आध्यात्मिक जागृति में अन्तर ही नहीं हो पाता था। काया को ही प्रत्यक्ष करते रहने से आत्मा दबती गयी। षराब की खुमारी से भी बढ़-चढ़कर देहभान रग-रग में समाया रहा। इन्द्रियाँ लोलुपता के रसों में गोते लगाती रहीं। सभी को दैहिक दृष्टि से देखते रहने के कारण आत्मा की महानता समझ में कैसे आती ? हजारों बार आत्मा-आत्मा कहकर कहता-पड़ता, सुनता-सुनाता रहा। पर अनुभव के साथ स्वीकारने का अवसर ही नहीं आने दिया। पहले ही सत्य पहिचान मिल जाती तो मूर्खतापूर्ण विकारी संस्कार नहीं बनाता। वस्त्र व यन्त्र की तरह षरीरों को तो आत्मा बदलती रहती है। यह तथ्य अनुभव में उतर जाता तो जीवन में सहज ही देवत्व दिखाई देने लगता। देह अहंकरवष स्वयं को देह मानने के कारण तो जन्म जन्मान्तर देह की नष्पर दुनियादारी में ही भटकते रहा। दैहिक रिष्णों में रमण करते रहने से कमलवत देवताई जीवन दूर होता ही गया। यदि अपने को चेतन प्राणी मानते हैं तो स्मृति में सचेतन आत्मिक दृष्टि ही बनाये रखना चाहिये था।

सर्व षवितवान परमपिता षिव की संतान हम आत्मारें इतनी दुर्बल और पराश्रित कैसे हो सकती हैं ? क्या इसीलिये जन्म लिया कि पवित्रता-सुख-षान्ति-आनन्द जैसे मौलिक गुण रहे ही नहीं ? मैं इतनी

दयनीय-हेय कैसे हो सकती हूँ ? क्या मैं बुदबुदे की तरह मिटने वाली हूँ ? यदि मास्टर सर्वषवितवान हूँ तो कुछ गर्व और गौरव का अनुभव तो होना ही चाहिये। यदि क्षणभंगुर शरीर ही मानकर जीवन बिताती रही तो संसार व समाज के लिये भार ही समझिये। अन्न-जल ग्रहण कर दुर्गन्ध विखेरने वाला जानवर ही मानिये। ऐसे लोगों का अन्तिम परिणाम मृत्यु के अलावा और क्या होगा ? “भृकुटी के बीच चमकता अजब सितारा ” सुना करता था। तिलक के बाद वही अक्षत लगाया करता जिसका अर्थ होता ही है अविनाशी आत्मा। परन्तु सुखों के सागर षिव परमपिता की अमर सन्तान स्वयं को अनुभव ही नहीं किया। विनाशी शरीर के रोग-षोक-बुढ़ापा तो सुन्दरता को इतना ढीला कर देते कि प्यार की बजाय लोग मुख मोड़ लिया करते हैं। जिस शरीर को जीवन भर धो-माँज कर प्रसाधनों से सजते रहा, वह तो चन्द ही क्षणों में जला दी जाती है। कितनी निरर्थक हो जाती मृत कार्या कि अपने कहे जाने वाले सम्बन्धी भी घर में रखने को तैयार नहीं होते। गन्दगी छू जाने पर स्नान करने की तरह, छूने को भी अच्छा नहीं मानते हुये नहाकर कपड़े बदलते हैं। मृत्यु होते ही जलाने व गाढ़ने के लिये आतुर हो जाते हैं। एक मिनट पहले वाली शरीर अब अपने ही बिस्तर पर सोने का अधिकार नहीं रखती। कितनी ही अरमानों से संजारा-संभाला था पर आत्मा के निकलते ही इसकी ऐसी दुर्दशा क्यों हो रही है ? सर्व प्राप्तिर्यों से दूर क्यों हो गई वही शरीर ?

देह अभिमान की कामाग्नि ही सबको झुलसाती हुई पतन के गति की ओर ले जा रही है। वासनाओं की अग्नि को तो ज्वालामुखी से भी भयानक बताया गया है। कि विकार ही पोषण के दिखावे में आत्मा को षोषित करते हुये पतन-पराभव की ओर ले जा रहे हैं। शारीरिक तृष्णा ही आत्मा रूपी समर्थ-स्वतन्त्र पंक्षी को पिंजरे की मैना बनायी हुई है। दैहिक वृत्ति के कारण ही नर-नारी दोनों एक दूसरे के लिये ब्याकुल रहते हैं। उनहतर साल पहले जौहरी दादा लेखराज के अन्तर से आवाज निकली थी-क्या इसी के लिये स्वयं को जीवन भर भटका रहे हो ? धिक्कार है ऐसे जीवन को जो व्यर्थ ही बीता जाय। आत्मजागृति आते ही वे स्वयं को पूछने लगे, कब तक घोर निषा में सोते रहोगे ? देह अभिमान में ही जीते रहने से अन्त में क्या मिलेगा ? कुछ मास के लिये एकान्तवास का लाभ लेने काषी बनारस गये। भोले भण्डारी द्वारा सारी सृष्टि का ही महाविनाश दिखाये जाने पर उनमें नवसृष्टि के सृजनहार बनने और दैहिक वृत्ति से वैशम्य लेने का अपूर्व साहस झट जाग उठा।

भोग-विलास में डूबा व्यक्तित्व स्वयं के श्रेष्ठ स्वाभिमान को समझ ही नहीं पाता है। रात की वेहोषी में पतित बन दिन में दिखावटी शृंगार करता रहता है। चमड़ी की मोहकता वा इन्द्रियों का आकर्षण तो कफ-पित्त-वात-स्वत जैसी गंदगी से भरा हुआ है। हरि जैसी दिप्तिमान आत्मा की महत्ता को न जान देह में ही बंधे रहना अज्ञानता ही नहीं, चेतना का गला घोटना है। ऐसे आत्म हत्यारे आध्यात्मिक सौन्दर्य का दैवीय सुख कैसे ले सकते हैं ? कारर स्वभाव के कारण क्षणिक सुखों में बिधे रह अतेन्द्रिय सुखों से वंचित हो जाते हैं। साधना द्वारा अमर विजय को न प्राप्त कर नष्ट-बदलती रहने वाली शरीर में ही परम सुख ढूढ़ते चाहते हैं। मांस लोथड़ो को ही सब कुछ समझना जन्म जन्मान्तर के लिये भवबंधन में फंसना है। दिव्य नेत्रों के खुलते ही देह की मायावी दुनियाँ मरघट जैसी दिखाई देगी। तो पूछते ही रहिये, ऐसी ही मूर्खता में यह पुरुषोत्तम संगम युगी जीवन तो नहीं बीत रहा है ? आत्मोत्थान के लिये बढ़ते जा रहे हैं कि नहीं ?

हम आत्माओं के पास आत्म बल के साथ-२ परमात्म बल है। ब्रह्माण्ड के चप्टे-२ पर अब अपना शुभ प्रभाव विखेरते रहिये। हमारे दिव्य सकाष से आत्माओं के साथ सभी तत्व भी सतोप्रधान बनते जायेंगे। देह के संबंधों-पदार्थों से उपराम रहते हुये सदा अव्यवत भाव बनाये रखिये। साधन दुखों के कारण नहीं है। पतित दृष्टि-वृत्ति-कृति स्मृति ही परम सुखों को छीनती जा रही है। आत्मबोध होते ही षान्तिधाम की षान्तिदायिनी स्मृति हमें कमलवत बनाये रखेगी। प्रजापिता ब्रह्मा भी सपरिवार परमात्म पथ पर बढ़े। उन्होंने रातों-दिन लिख व बोलकर आत्मा का पाठ पक्का किया। तभी तो षिव बाबा का ब्रह्माकुमारीज द्वारा स्थापित दैवीधर्म पूरी-पूरी बसुधा को वैकुण्ठ धाम बना देता है। सर्वगुणों के सागर षिव की आध्यात्मिक सुगन्ध से सारी बसुन्धरा ही आभामय हो जाती है। साधन उपयोग व उपभोग के लिये है पर निराषवत हो साधना में रत रहने से ही आत्मोत्थान होगा। ६३ जन्मों तक बहुत भटके पर अब “मैं हूँ ही आत्मा” के अनुभव में स्थित हो कार्य-व्यवहार में आइये तो सर्व समस्याओं का समाधान स्वतः मिलता जायेगा। आत्मिक रूप से भाई-भाई की व्यवित बनने पर ही जीवन मुक्ति हमें ईश्वरीय जन्मसिद्ध अधिकार में प्राप्त होगी। तब मैं हूँ ही सर्व प्राप्ति सम्पन्न, षिव पिता की संतान आत्मा की धुन सुनाई देती रहेगी।

- ब्रह्माकुमारीज् वार्ता फिचर्स

www.bkvarta.com